संहिता काल की नारी बौद्धिक परम्परा

भानुप्रिया
छात्रा, मिरांडा हाउस
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश (Abstract):

1. भूमिका (Introduction):

संस्कृत साहित्य को सामान्यतः वैदिक एवं लौकिक इन दो भागों में विभाजित किया जाता है, जिनमें वैदिक साहित्य को सर्वाधिक प्राचीन तथा भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति एवं मानवीय जीवन के अध्ययन का प्रमुख स्रोत माना गया है। वैदिक साहित्य के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद ये चार भाग ज्ञान, यज्ञीय परम्परा तथा दार्शनिक चिंतन के क्रमिक विकास को प्रदर्शित करते हैं।

2. विषयोपस्थापना:

प्रस्तुत शोध में संहिता काल के अंतर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के आधार पर नारी की मानसिक स्थिति, सामाजिक स्थान एवं जीवनानुभवों का विश्लेषण किया गया है। वेदों में नारी के विविध रूप कन्या, पत्नी, माता, विदुषी एवं ऋषिका का वर्णन उसके बहुआयामी व्यक्तित्व को दर्शाता है।

3. शोधपद्धति

इस शोध में वैदिक संहिताओं का पाठविश्लेषण (Textual Analysis) एवं तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study) पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसके माध्यम से विभिन्न वेदों में नारी की स्थिति, अधिकारों एवं सामाजिक भूमिका का अध्ययन किया गया है।

4. शोधपरिणाम :

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संहिता काल में नारी को शिक्षा, उपनयन एवं वैवाहिक स्वतंत्रता प्राप्त

थी, जिससे उसकी बौद्धिक एवं मानसिक उन्नति संभव हुई। किन्तु ऋग्वेद से अथर्ववेद तक के काल में शिक्षा-निषेध, सभा-प्रतिबंध एवं बहुविवाह के कारण नारी की स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक स्वतंत्रता एवं शिक्षा नारी सशक्तिकरण के प्रमुख आधार रहे हैं।

Key Words:
वैदिक साहित्य, संहिता काल, नारी, नारी शिक्षा, वैवाहिक स्वतंत्रता, मानसिक स्थिति, नारी सशक्तिकरण

संहिता काल की नारी बौद्धिक परम्परा

वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य के दो मुख्य भागों में संस्कृत साहित्य को सामान्यतः विभाजित किया जाता है। वैदिक साहित्य को संस्कृत साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन धारा माना जाता है। यह प्राचीन भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति तथा मानवीय जीवन के विविध पक्षों को समझने का प्रमुख स्रोत है। अतः भारतीय परम्परा, विचारधारा तथा सामाजिक संरचना के अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य का विशेष महत्त्व है। वैदिक साहित्य को परम्परानुसार चार भागों में विभाजित किया गया है संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद। इन चारों भागों में वैदिक ज्ञान, यज्ञीय परम्पराएँ, दार्शनिक चिन्तन तथा आध्यात्मिक विचारों का क्रमिक विकास परिलक्षित होता है। इनमें संहिता भाग को वैदिक साहित्य का सर्वप्रथम एवं आधारभूत अंग माना जाता है, जिसमें विभिन्न देवताओं की स्तुतियों, प्रार्थनाओं तथा यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन प्राप्त होता है।

संहिता साहित्य के अन्तर्गत चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का समावेश होता है। ये वेद न केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, अपितु उस समय के सामाजिक जीवन, मानवीय भावनाओं तथा मानसिक अवस्थाओं का भी परिचय कराते हैं। अतः प्रस्तुत शोध में मुख्यतः संहिता काल का अध्ययन किया जाएगा, जिसके अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के आधार पर उस समय की स्त्रियों की मानसिक स्थिति, उनके सामाजिक स्थान तथा उनके जीवनानुभवों का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा।

वेद एवं नारी शब्द की उत्पत्ति –

पवित्र ज्ञान का प्रतीक "वेद" शब्द 'विद्' से आया है। 'विद्' का मतलब जानना, होना, पाना, और मनन करना है। "वेद" के अनेक पर्याय हैं जैसे श्रुति, छंदस्, ब्रह्म, निगमागम, और आम्नाय। "वेद" शब्द विद्, विद्ऌ धातु से बना है, जिसमें घञ् प्रत्यय जोड़ा गया है। 'नृ' या 'नर' से बना नारी शब्द यजुर्वेद संहिता में बहुत कम मिला है। साम संहिता में इसका प्रयोग नहीं मिलता। हालांकि, अथर्ववेद संहिता में 'नारि' या 'नारी' का सात-सात बार प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में नारी शब्द का अधिक इस्तेमाल हुआ है। इसका असर यह है कि संहिताकाल के बाद के ग्रंथों में नारी शब्द चर्चा का मुख्य विषय बना। ऋक् संहिता (7/20/5, 7/55/8, 8/77/8, 10/18/7, 10/76/10-11) में 'नृ' से बने नर और नारी का उपयोग वीरता, दान देने, और नेतृत्व के संदर्भ में किया गया है। इस समय नर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर घरेलू काम करने, यज्ञ करने, दान देने, और अतिथियों तथा साधुओं का स्वागत करने का जिक्र मिलता है।

महाभाष्यकर पतंजलि ने नारी शब्द की व्युत्पत्ति 'नृ+ अन्+ ङीन्' और 'नर+ ङीप्' से बताई है। नृत्त्व और नरत्त्व जाति विशिष्टा के लिए स्त्री या नारी मानी गई है। महर्षि यास्क ने नारी के मूल शब्द 'नर' की व्युत्पत्ति नाचना धातु से की है। अपनी अमर रचना निरुक्त (5/1/3) में उन्होंने लिखा, "नराः मनुष्य

नृत्यन्ति कर्मसु", मतलब नर अपने काम करते समय अपने अंगों का उपयोग करता था, इसलिए उसे "नर" कहा गया है।[1]

संहिता काल में नारी के विविध नाम एवं बहुआयामी रूप –

संहिताओं में नारी के विभिन्न नामों का प्रयोग किया है जैसे नारि, मेना, योषा, जाया, स्त्री, सुंदरी (सूनरी), वधू, पत्नी जनि, जनी, दंपती, विध्वा, सती, पुरन्ध्री। नारी के विविध रूप कन्या, दुहिता, गौरी, गौरि, अमाजुर (अमाजु),वधू , स्नुषा, पत्नी, सपत्नी, माता (पर्याय-अम्बा, अम्बि, अंबालिका, अम्बी, प्रसु, जनि, जननी), भगिनी (स्वसा), जामि, ननद, भातृजाया आदि।

नारी जन्म, प्रारंभिक संस्कार एवं नारी शिक्षा -

संहिता काल में 16 संस्कारो के प्रारम्भिक संस्कार पुत्र एवं पुत्री के लिए समान थे। समान जन्म-संस्कारों ने एक सुरक्षित आसक्ति (secure attachment) का निर्माण किया, जो आत्मविश्वास का एक मजबूत आधार तैयार करता है। इससे लिंग-आधारित चिंता (gender anxiety) कम होती है और बौद्धिक विकास के लिए एक सकारात्मक मानसिकता का विकास होता है।

वैदिक काल में महिलाओं के लिए शिक्षा के दरवाजे खुले थे। यही वजह है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए ऋषिकुलों और गुरुकुलों में लड़कियों का प्रवेश और उनके ब्रह्मचर्य का उल्लेख अथर्ववेद संहिता (11/5/18) में साफ-साफ किया गया है।[2] इसके परिणामस्वरूप, अपाला, अत्रैयी, घोषा जैसी कई विदुषियों और मंत्रद्दष्टियों का जीवन परिचय और उनके द्वारा देखे गए मंत्रों का प्रमाणित विवरण हमें वेदों में मिलता है। रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शाश्वतो, अपाला, यमी, घोषा, सूर्या, इंद्राणी, उर्वशी, दक्षिणा, सरमा, जुहू, वाक्, रात्रि, गोधा, श्रद्धा, इंद्रमातर, शची, सार्पराज्ञी जैसी ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की कहानियों से पूरा वैदिक वाङ्मय चमकता है। ऋग्वेद में घोषा (1/117/19) और वध्रिमती (1/116/13) को बुद्धिमान कहा गया है। घोषा ने दशम मंडल के 39 और 40 में सूक्त का साक्षात्कार किया था। इन सूक्तों में 28 मंत्र हैं, जो कुमारी कन्याओं के लिए वेद के महत्व को दर्शाते हैं।ऋषिकाओं जैसे घोषा (ऋग्वेद 10/39-40) एवं लोपामुद्रा (1/179) की मंत्र-रचनाएँ उनकी भावनात्मक बुद्धिमत्ता (emotional intelligence) एवं अंतर्मुखी चिंतन (introspection) का प्रमाण हैं, जो वैदिक मनोविज्ञान की **स्थिरप्रज्ञा** अवस्था को प्रतिबिंबित करती हैं।

1. 11/5/18 अथर्ववेद संहिता
2. 10/109/4 ऋग्वेद संहिता, सायणभाष्य सहित, सम्पा० मैक्समूलर (वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़)

उपनयन का प्रचलन बालिकाओं के लिए भी था। बालिकाएं मौञ्जी पहनती थीं, जो ब्रह्मचर्य का प्रतीक माना जाता था। यज्ञोपवीत धारण करने वाली नारी के गुणों का उल्लेख हमें ऋग्वेद संहिता (10/109/4)

में मिलता है।[3] ऋग्वेद में नारी के लिए "उपनीत" शब्द का प्रयोग किया गया है। "उपनीत" उन बालकों के लिए इस्तेमाल होता था, जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं, हालांकि सायण ने इसे 'बृहस्पति के समीप स्थित' के रूप में समझा है। लेकिन अन्य विद्वानों के अनुसार, यज्ञोपवीत धारण करने वाली नारी को "उपनीता" कहा जाता है। यहाँ यह बताया गया है कि यज्ञोपवीत धारण करने के बाद नारी इतनी सफल हो जाती थी कि वह एक दुष्ट और पथभ्रष्ट पति को भी सही मार्ग पर ला सकती थी।

शुद्धाः पूता योषितों यज्ञियां इमा ब्रह्मणां हस्तेंषु प्रपृथक्सांदयामि। यत्कांम इदं अंभिषिञ्चामिं वोऽहमिन्द्रों मरुत्वान्त्स ददातु तन्में ॥[4]

लेकिन समय के साथ, कन्याओं के उपनयन संस्कार पर लोगों ने सवाल उठाने शुरू कर दिए। उपनयन के बिना, नारी समाज के लिए वैदिक शिक्षा का रास्ता हमेशा के लिए बंद हो गया। शिक्षा की कमी के कारण कन्याएं द्विजपद से वंचित हो गईं और उन्हें समाज में शूद्रों की तरह गिना जाने लगा। समय के साथ, उपनयन पर रोक ने एक तरह की असहायता को जन्म दिया, जिससे नारी द्विज-स्थिति से बाहर होकर मानसिक अवनति की ओर बढ़ने लगी। यह शूद्रीकरण एक प्रकार का संज्ञानात्मक असंतुलन पैदा करता था, जो वैदिक बौद्धिक परंपरा से विच्छेद का कारण बना। लेकिन संहिता काल की यही शिक्षा की नींव थी जिसने ऋषिकाओं की मानसिक लचीलापन को संभव बनाया।

विवाह प्रथा एवं वैवाहिक स्वतंत्रता -

वैदिक काल में नारी के लिए शिक्षा का द्वार खुला था। यही कारण है कि ज्ञानार्जन हेतु ऋषिकुलों व गुरुकुलों में बालिकाओं के प्रवेश तथा उनके ब्रह्मचर्य का वर्णन अथर्ववेद संहिता (11/5/18) में स्पष्ट रूप से है।[5] इसी के फलतः अपाला, अत्रैयी, घोषा आदि अनेक मंत्रदृष्टियों, विदुषियों का जीवन परिचय एवं उनके द्वारा दृष्ट मत्रों का सप्रमाण विवरण हमें वेदों में प्राप्त होता है। रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शाश्वतो, अपाला, यमी, घोषा, सूर्या, इंद्राणी, उर्वशी, दक्षिणा, सरमा, जुहू, वाक्, रात्रि, गोधा, श्रद्धा, इंद्रमातर, शची, सार्पराज्ञी आदि ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की यथोगाथा से संपूर्ण वैदिक वाङ्मय दैदीप्यमान है। ऋग्वेद मे घोषा(1/117/19) एवं वध्रिमती(1/116/13) को प्रभूत बुद्धिशालिनी कहा गया

[3] 6/122/5 अथर्ववेद संहिता

[4] 11/5/18 अथर्ववेद संहिता

[5] 1/6/3 पारस्कर गृह्यसूत

है। घोषा ने दशम मंडल के 39 में एवं 40 में सूक्त का साक्षात्कार किया था। इन सूक्त में 28 मंत्र है, जिनमें कुमारी कन्याओं के लिए वेद अध्ययन से लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने तक के समस्त कार्य सुचारु रूप से प्रतिपादित है। इनको ज्ञान अपने पैतृक परंपरा से मिला था। पति अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा ने ऋग्वेद प्रथम मंडल के 179 सूक्त का दर्शन किया। अपाला, रोमाशा एवं सूर्य पुत्री सूर्या ने मंत्र रचनाएं की, इंद्राणी ने ऋग्वेद के दशम मंडल के सूक्त की रचना की। पारस्कर गृह्यसूत्र में वर्णित है - "हे वरानने! जैसे मैं तुझे ग्रहण करता हूं वैसे तू भी मुझे ग्रहण करने की अधिकारी हो। मैं सामवेद हूँ, तो तू ऋग्वेद है। यदि तुम पृथ्वी हो, तो मैं सूर्य हूँ। आओ हम मिलकर संतान उत्पत्ति करें और परस्पर रुचि रखते हुए 100 वर्षों तक सुख में जीवन यापन करें।"[6] इससे ज्ञात होता है कि उसे समय विवाह के पश्चात पुरुष एवं स्त्री को समान अधिकार प्राप्त थे। पारस्कर गृह्यसूत्र (1/6/3) का समान अधिकार वर्णन संबंधीय संतुलन स्थापित करता था, जो भावनात्मक संतुष्टि एवं मानसिक स्थिरता का आधार बना।

विविध विवाहों का वर्णन भी ऋग्वेद में पाया जाता है। ऋग्वेद में ब्रह्म विवाह(10/85) गान्धर्व विवाह(10/27/12) आदि का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद से पता चलता है उसकी समय विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने अनुकूल वर चुनने की स्वतंत्रता थी।[7] उसे समय वैवाहिक स्वतंत्रता थी, इसका वर्णन ऋग्वेद (10/39/8 तथा 1/126) में मिलता है, राजा पुरुमित्र की कन्या कमधु के विमद ऋषि को स्वयंवर सभा में पति के रूप में चुना था। स्वयंवर में आए अन्य लोगों ने विमद पर आक्रमण किया, जिससे अश्विनी कुमारों की सहायता से दंपटी के घर पहुंचने का वर्णन प्राप्त होता है। पुनर्विवाह का प्रचलन था। उपरोक्त वैदिक संहिता कालीन विवाह-प्रणाली ने नारी में स्व-निर्णय शक्ति (self-determination) की मजबूत नींव रखी, जहाँ स्वयंवर एवं गान्धर्व विवाह ने स्वायत्तता (autonomy) प्रदान कर वैवाहिक चिंता न्यूनीकरण किया।[8] पारस्कर गृह्यसूत्र का समान अधिकार वर्णन संबंधीय संतुलन (relational equity) स्थापित करता था, जो भावनात्मक संतुष्टि एवं मानसिक स्थिरता का आधार बना।[9]

ऋग्वेद संहिता में एक विधवा स्त्री को संबोधित करते हुए कहा गया है कि तुम भूत पति को छोड़कर भावी पति को प्राप्त करो।[10] घोषा ने ऋक् संहिता के दशम मंडल के 29वें सूक्त के तीसरे मंत्र में

[7] 10/27/12 ऋग्वेद संहिता

[8] 1/6/3 पारस्कर गृह्यसूत्र

[9] 10/18/8 ऋग्वेद संहिता

[10] 10/18/8 ऋग्वेद संहिता

'अमाजुर' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है अपने पिता के घर वृद्धावस्था तक निवास करने वाली कन्या। इससे स्पष्ट होता है कि उसे समय स्त्रियों के पास विवाह न करने की स्वतंत्रता भी थी।

पुनर्विवाह एवं 'अमाजुर' स्वतंत्रता ने लचीलापन (resilience) विकसित किया, जो विधवा-दुख या बहुविवाह तनाव से मुक्ति दिलाता था।[11]

विवाहकाल में कन्यादान और पाणिग्रहण के बाद 'लाजा-होम' के अवसर पर कन्या के लिए सर्वप्रथम 'नारी' शब्द का प्रयोग हुआ क्योंकि इससे पूर्व उसका नर के साथ संबंध नहीं था। नारीत्व की भावना आते ही उसके मुख से निकल पड़ा "आयुष्यमानस्तु में पति" तथा " एधत्ता ज्ञायतो मम"।[12] लाजा-होम पर "नारी" शब्द-उत्थान ने पहचान परिवर्तन (identity transition) को सकारात्मक बनाया, नारीत्व की भावना से आत्म-सम्मान (self-esteem) बढ़ाया। वैदिक मनोविज्ञान में यह कर्मयोगीन उद्देश्यपूर्णता पैदा करता था।

ऐसी ऋक्कालीन नारी 'स्त्रिय पुसोऽतिरिच्यन्त" (मैत्रायिणी संहिता) में प्रतिपादित नारी की प्रतिष्ठा जब बहु विवाह के व्यवहार में धूमिल होने लगी तो 'नारी' शब्द में अपना स्वरूप 'नारि' में बदल लिया। सर्वतोभावेन अपने नर के प्रति आत्मसमर्पण करने वाली ऋक् संहिता की स्त्री के मन में अथर्ववेद संहिता तक आते-आते पुरुषवर्ग के प्रति क्षोम की भावनाओं का जन्म हो गया। "नारि" शब्द की उत्पत्ति सायण ने "न+अरि" अथवा "नृणा महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारि" की है। अंतर स्पष्ट है ऋक् कालीन नारी अपने पाणिग्रहण संस्कार के बाद नर के संपर्क के कारण अपने लिए सर्वप्रथम नारी शब्द का प्रयोग करती है वही अथर्ववेद संहिता की "नारि" अपनी सपत्नी से इतना भयभीत रहती है कि वह अपने पति को नपुंसक बनाने में जादू टोना आदि का प्रयोग करती है। ऋग्कालीन 'नारी' से अथर्वकालीन 'नारि' का रूपांतरण क्षोभ भावना (resentment) एवं संदेह संस्कार (fear conditioning) दर्शाता है, जहाँ बहुविवाह ने संज्ञानात्मक असंतुलन (cognitive dissonance) जन्म दिया। सपत्नी-भय से जादू-टोना प्रवृत्ति नियंत्रण हानि (loss of control) का लक्षण था, जो मानसिक अवनति का प्रारंभ था।

नारी के बहुआयामी रूप एवं भूमिकाएँ –

वेदों में माता की भूमिका को का वर्णन भी प्राप्त होता है माता निर्मात्री कही गई है यदि वह स्वयं बुद्धिमती होगी तभी वह बच्चों में अच्छे संस्कार दे पाती है। माता को प्रथम गुरु माना जाता है यदि वह उचित-अनुचित का निर्णय करने में सक्षम होगी तभी वह यह ज्ञान अपने संतति तक पहुंच पाएगी अतः

[11] 1/6/2 पारस्कर गृह्यसूत्र

[12] 10/125 ऋग्वेद संहिता

यजुर्वेद में कहा है- "आपो अस्मान् मातर शुन्धयन्तु।" उपरोक्त संहिता कालीन बहुआयामी भूमिकाओं ने नारी में बहु-भूमिकात्मक लचीलापन (multifaceted resilience) विकसित किया, जहाँ माता-गुरु

(यजुर्वेद:"आपो अस्मान् मातर शुन्धयन्तु") ने उद्देश्यपूर्णता (sense of purpose) प्रदान कर भावनात्मक परिपक्वता स्थापित की।

ऋग्वेद के 10 मंडल के 125वें सूक्त की दृष्टा वागाम्भृणी हैं, जिनमें संगठन करने की अद्भुत शक्ति है। संगठन शक्ति के रूप में अपना परिचय देता हैं-

"अहं राष्ट्रो सङ्गमनी वसूना चिकितुषा प्रथमा यज्ञियानाम्।
ता मा देवा व्यदधु पुरुषा भूरिस्थात्रा भूर्पादेशयन्तीम्।।"[13]

“मैं राज्यों की अधिष्ठात्नो और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञान से अलंकृत तथा यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले सभी साधनों में सर्वोत्तम हूँ। मैं प्राणिमात्र में निवास करती हूँ। देवता ने मुझे महत्व देते हुए अनेक स्थानों पर स्थापित किया है।“

ऋग्वेद(10/125) की वागम्बृणी का सूक्त, " अहं राष्ट्रः सङ्गमनी वसूना " संगठनात्मक नेतृत्व (organizational leadership) की मनोवैज्ञानिक स्थिति को दर्शाता है । " ज्ञान से सुशोभित" स्व-परिचय बौद्धिक आत्मविश्वास (intellectual self-efficacy) को दर्शाता है, जिससे प्रवाह अवस्था (flow state) उत्पन्न होती है तथा रचनात्मक निरूपण को सशक्त किया जाता है । इस भूमिका से नारी को माँ के रूप में व्यापक चेतना (transcendent consciousness) के रूप में कर देती है, जहाँ व्यक्तिगत स्व-छवि सामूहिक कल्याण के रूप में विलीन हो जाती है । न्याय कर्ता के रूप में हमें स्त्रियों का वर्णन संहिताओं में भी मिलता है । यजुर्वेद संहिता के 10 अध्याय के प्रथम चार मन्त्रों में राज्याभिषेक और पांचवें मंत्र में सिंहासन आरोहण तथा राजा की तेजस्विता होती है । 26वें एवं 27वें मंत्रों की देवता राजपत्नी आसन्दी है । इन मंत्रों के मनन से प्रतीत होता है कि उसे समय राजाओं की पत्नियाँ दूसरों को न्याय एवं राजनीति की शिक्षा देती थी तथा चक्रवर्ती राजा की तरह ही स्त्री समाज की समस्याओं पर अपना निर्णय प्रदान करती थी ।

"स्थोना सि सुपदा सि क्षत्रस्य यीनिरसि।
स्थोनामासीद् सुपदामासीद् क्षत्रस्य योनिमामीद्।
निपसाद धृतत्रतो वरुण पस्त्यास्या साम्राज्याय सुक्रतु।।"[14]

[13] 10/26-27 यजुर्वेद संहिता

[14] 5/30/8 ऋग्वेद संहिता

यजुर्वेद संहिता के 65वें मंत्र में सत्याचरण वाली नारी निर्ऋति दमनकारिणी से न्यायाधीश बनकर उचित निर्णय द्वारा दंडनीय व्यक्ति को दंड देकर निरपराधियों को बंधन से मुक्त करायें की प्रार्थना की गयी है। यजुर्वेद (10/26-27) के आसन्दी की राजनीतिक शिक्षा-प्रदान एवं निर्ऋति-दमन भूमिका न्यायपूर्ण नेतृत्व (just leadership) की मानसिक संरचना दर्शाती है। मंत्र साम्राज्यीय मानसिकता (imperial mindset) की स्थापना करता है, जो तनाव सहनशीलता (stress resilience) एवं नैतिक निर्णय-क्षमता (moral decision-making) के लिए मानसिक संरचना तैयार करता है। यह भूमिका संज्ञानात्मक जटिलता (cognitive complexity) को बढ़ाती है, जो बहुआयामी सामाजिक चुनौतियों का समाधान सुझाती है।

योद्धाओं के रूप में भी नारी का वर्णन प्राप्त होता है युद्ध से स्थिति में नारी अपने पति के साथ समरांगण में जाती थी, आवश्यकता पड़ने पर रथ संचालक से लेकर युद्ध संचालन तक सभी कार्य करती थी। ऋक् संहिता अनुसार दैत्य राज नमुचि ने बभ्रु ऋषि की गायों का अपहरण कर लिया था। ऋषि के अह्वान पर इंद्र युद्ध के लिए आए तो उन्होंने युद्ध स्थल पर बहुत बड़ी सेना को देखा जिसमें अधिकांश नारियां थी।नमुचि-युद्ध (5/30/8) में नारी-प्रधान सेना संघर्ष-प्रवणता (conflict proneness) दर्शाती है, जो आघात-प्रतिक्रिया (trauma response) को सकारात्मक रूपांतरित करती है।

ऋग्वेद 10 मंडल के 102वें सूक्त में महर्षि 'मृद्गल' के गोधन का अपहरण होने पर उनकी पत्नी 'मृद्गलानी' ने रथारोहण किया, युद्ध किया तथा खोया हुआ गोधन वापस प्राप्त किया।[15]

इसी प्रकार हमें संवाद सूक्त दसवें मंडल के 108 में सूक्त में सरमा एवं पणियों का संवाद मिलता है जिसमें सरमा देवशुनी एक दूती के रूप में पणियों के पास जाती है, जिन्होंने आर्य लोगों की गोदान को चुराकर अज्ञात स्थान पर रखा था। पणि लोगों ने सरमा को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए, अनेक गोधन का हिस्सा देने का लालच दिया लेकिन सरमा अपनी स्वामी भक्ति को ध्यान में रखते हुए उन सबको ठुकरा देती है तथा वह अकेली उसे स्थल पर जाती है इससे उसकी निर्भीक कथा ज्ञात होती है। मृद्गलानी (ऋग्वेद 10/102) का गोधन-प्रहार एवं सरमा (10/108) का प्रलोभन-प्रतिरोध तात्कालिक साहस (situational courage) एवं स्वामी-भक्ति आधारित लचीलापन (loyalty-based resilience) का प्रमाण हैं।

अथर्ववेद संहिता में स्वाभिमानी नारि पति से "अहं वदामि नेतृत्व सभायामह त्वं वद।"[16] इसके अतिरिक्त मैत्रायिणी संहिता में प्रमाण है कि अब नारी समाज पर सभाओं में जाने और बोलने का

[15] 102/10 ऋग्वेद संहिता

[16] 7/28/5 अथर्ववेद संहिता

प्रतिबंध लगा दिया था। इससे ज्ञात होता है कि ऋक् काल से अथर्ववेद तक आते-आते नारियों का दायरा गृह कार्य तक सीमित कर दिया था। घर में नारी का वर्चस्व था तथा सभा में पुरुषों का। सभा-प्रतिबंध ने सामाजिक अलगाव (social isolation) उत्पन्न किया, गृह-सीमाबद्धता से भूमिका-संकोचन (role constriction) हुआ। मैत्रायिणी संहिता का प्रमाण नियंत्रण-हानि (loss of agency) दर्शाता है, जो अवसादजन्य लक्षण (depressive symptoms) का आधार बना। फिर भी घरेलू वर्चस्व ने न्यूनतम स्वायत्तता (residual autonomy) संरक्षित रखी।

ये बहुभंगी भूमिकाएँ बहु-प्रतिभा सिद्धांत (polymathy principle) को साकार करती हैं, जहाँ माता-निर्णयशीलता-योद्धा संयोcजन संज्ञानात्मक लचीलापन (cognitive flexibility) प्रदान करता है। यह विविधता रचनात्मक समस्या-समाधान (creative problem-solving) को प्रोत्साहित करती है, जो ऋषिकाओं की मंत्र-दृष्टि का मनोवैज्ञानिक स्रोत बनी। आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान की PERMA मॉडल (Positive Emotion, Engagement, Relationships, Meaning, Accomplishment) के समान वैदिक नारी की भूमिकाएँ पूर्ण मानसिक कल्याण सुनिश्चित करती थीं।

निष्कर्ष-

संहिता काल में नारी बौद्धिक परम्परा का विश्लेषण स्पष्ट करता है कि वैदिक समाज ने शिक्षा, विवाह स्वतंत्रता एवं बहुभंगी भूमिकाओं के माध्यम से नारी को ऐसा मानसिक वातावरण प्रदान किया था जो स्व-प्रभावकारिता, भावनात्मक बुद्धिमत्ता एवं लचीलापन विकसित करने में समर्थ था। उपनयन से ब्रह्मवादिनी बनने का मार्ग, स्वयंवर की स्वायत्तता तथा माता-योद्धा-न्यायेता के रूपों ने नारी चेतना को स्थिरप्रज्ञा अवस्था तक पहुँचाया, जिसका प्रमाण ऋषिकाओं की मंत्र-रचनाओं में विद्यमान है।

ऋग्वेद से अथर्ववेद की ओर सभा-प्रतिबंध, शिक्षा-निषेध एवं बहुविवाह के उदय ने निश्चय ही संज्ञानात्मक असंतुलन उत्पन्न किया, किन्तु संहिता काल की यह बौद्धिक नींव इतनी सुदृढ़ थी कि नारी की रचनात्मक शक्ति पूरी तरह नष्ट न हो सकी। 'नारी' से 'नारि' का यह संक्रमण वैदिक आदर्शों के क्षय की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

आधुनिक संदर्भ में यह अध्ययन नारीवाद को ऐतिहासिक सत्यापन प्रदान करता है बौद्धिक उत्कृष्टता सामाजिक स्वतंत्रताओं का उपज है। संहिता काल की नारी परम्परा सिद्ध करती है कि सकारात्मक मनोविज्ञान के सिद्धांत प्राचीन भारत में साकार थे, तथा इन वैदिक आदर्शों की पुनर्स्थापना ही वास्तविक लिंग समानता का मार्ग प्रशस्त करेगी।

संदर्भ सूची-

1. ऋग्वेद संहिता, सायणभाष्य सहित, सम्पादक— F. Max Müller, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़।
2. अथर्ववेद संहिता, सायणभाष्य सहित, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़।
3. यजुर्वेद संहिता, सायणभाष्य सहित, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़।
4. सामवेद संहिता, सायणभाष्य सहित, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़।
5. निरुक्त, महर्षि यास्क, वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन।
6. महाभाष्य, महर्षि पतंजलि।
7. पारस्कर गृह्यसूत्र, सम्पादित संस्करण, वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन।
8. मैत्रायिणी संहिता, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़।
9. वैदिक साहित्य सम्बन्धी आधुनिक शोधग्रंथ एवं लेख